



प्रेम का स्वरूप (भक्ति)

आभा श्रीवास्तव

असि0 प्रोफेसर- हिन्दी विभाग, श्री सुदृष्टि बाबा पी0 जी0 कालेज, रानीगंज बलिया, (उ0प्र0), भारत

सारांश : मानव जाति का यह स्वभाविक गुण है कि वह अपने हृदय में स्थित भवनाओं को अपने तक सीमित न रखकर दूसरों के हृदय पर स्थापित करना चाहता है। ऐसा करने से उसे सुख की प्राप्ति होती है और दूसरों को भी उस सुख का अनुभव होता है और यही से पारस्परिक आचरण का केन्द्र बिन्दु आरम्भ होता है जिसके फलस्वरूप साहचर्य और सम्पर्क के कारण ही मानव में प्रेम की भावनाएं उत्पन्न होने लगती हैं। इसमें अतिरिक्त प्रेम का एक वह रूप है जिसे मानव जन्म से साथ लेकर आता है, वह है नर-नारी का प्रेम। स्त्री में आकर्षण और सौन्दर्य को देखकर पुरुष का वासना उद्वेलित होने लगता है और नारी में पुरुष के प्रति सम्पर्क की कामना जागृत होने लगती है। इस प्रेम को स्थूल एवं मासल प्रेम कहा गया है। पर यही प्रेम समय पाकर परलौकिक प्रेम का रूप धारण कर लेता है।

कुंजी शब्द- सुख का अनुभव, पारस्परिक आचरण, साहचर्य, भावनाएं, आकर्षण, सौन्दर्य, वासना उद्वेलित, स्थूल।

मनुष्य के अतिरिक्त अन्य जीव-जंतुओं में भी प्रेम पाया जाता है। क्योंकि "प्रेम वह अनुकूल मनोवृत्ति है जो किसी व्यक्ति, जीव-जंतु पदार्थ में सौंदर्य, गुण, शील, सानिध्य आदि के कारण उत्पन्न होती है।" मनुष्य में अपने पालतु कुत्ते, गाय, घोड़े आदि जीवों एवं प्राकृतिक सौन्दर्य तथा स्वदेश के प्रति अपार स्नेह एवं प्रेम देखा जाता है। इसी प्रकार ये जीव भी अपने स्वामियों के प्रति अपार स्नेह एवं प्रेम को प्रदर्शित करते देखे जाते हैं। प्रकृति प्रेम एवं देशभक्ति भी एक प्रकार का प्रेम है, परंतु निर्जीव एवं सजीव के बीच वह संबंध स्थापित नहीं हो सकता जो मनुष्य और मनुष्य के बीच होता है। आलम्बन के भेद से मनुष्य के प्रेम के कई भेद होते हैं जैसे स्त्री पुरुष का प्रेम, भाई-बहन का प्रेम, पिता-पुत्र का प्रेम, गुरु-शिष्य का प्रेम, इत्यादि। इसी प्रेम को परलौकिकता के आधार पर शांत, माधुर्य, साख्य, वात्सल्य एवं दास्य भक्ति कहा जाता है। इन सबमें स्त्री-पुरुष अर्थात् माधुर्य का प्रेम अलग छवि रखता है, क्योंकि इसका मूल आधार स्त्री-पुरुष के प्रेम में एक का शरीर, मन और आत्मा दुसरे के शरीर मन और आत्मा से मिलकर एक हो जाता है और आनन्दनुभूति को प्राप्त करते हैं। प्रेम का यही रूप साहित्य में एक मत से स्वीकार किया गया है। स्त्री-पुरुष का शारीरिक एवं मानसिक आकर्षण ही प्रेम की व्याख्या प्रस्तुत कर साहित्य जगत में वर्चस्व बनाये हुये हैं।

यही प्रेम जब भक्तिपूर्वक ईश्वर का चिंतन-मनन करते हुए शुद्ध-बुद्ध खो देता है और पुर्णतया: ईश्वरानुरक्त हो जाता है तो उसे परलौकिक या आध्यात्मिक या शुद्ध पौराणिक प्रेम कहते हैं श्रीमद् भागवत पुराण में कहा गया

है। " भगवान की प्रेममई भक्ति से जब संसार की समस्त आशक्तियाँ मिट जाती हैं, हृदय आनन्द से भर जाता है तब ईश्वर के तत्व का अनुभव अपने आप होने लगता है।"²

प्रेम भाव को प्रकट करने के लिए भारतीय साहित्य में प्रीति शब्द का अर्थ प्राचीनकाल से प्रेम होता है। प्राचीनकाल के मानवीय प्रेम का सर्वोत्तम उदाहरण स्त्री-पुरुष के यौवन सम्बन्ध में पाया जाता है, इसलिए मध्यकालीन प्रेमभाव का सबसे अच्छा स्थान वही है जहां भक्त अपने भगवान को अंतरभाव (पति) से अपनाता है। प्रेम की एक बहुत बड़ी विशेषता यह भी है कि उसमें आनंद का अंश बराबर बना रहता है। प्रेमी को अपने प्रेम पात्र से अलग होने पर उसकी स्मृति हमेशा आनन्द विभोर किये रहती है, और उनकी विरह में कष्ट झेलना भी सुखद समझती है, क्योंकि प्रेम ऐसा भाव है जो अलौकिक एवं अलौकिकता होते हुए भी एक से अधिक रूप धारण करता है जैसे दास्य, साख्य, वात्सल्य एवं दाम्पत्य आदि। दास्य भाव में पूर्ण समर्पण की भावना होती है जो शरणागत एवं आत्म समर्पण का ही दुसरा रूप है जो दास्य प्रेम भाव के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वात्सल्य प्रेम का आलम्बन शिशु रूप में जो माता-पिता तथा उसके स्नेहिल शिशु से सम्बन्धित है, किन्तु यह प्रेम सामान्य धरातल का नहीं है, बल्कि यह अपने ईष्टदेव के प्रति व्यक्त किया हुआ विलक्षण प्रेम है, जो सूरदास के काव्य में कुछ अधिक दृष्टिगोचर होता है। साख्य प्रेम में धरातल की समानता होती है। कोई छोटा बड़ा नहीं होता है। श्रीकृष्ण के प्रति अर्जुन एवं उद्धव का जो प्रेम था। वह साख्य प्रेम के माध्यम से जोड़ा गया साख्य प्रेम था। दाम्पत्य



प्रेम में स्त्री-पुरुष का प्रेम होता है। मध्यकालीन कवियों में तुलसी, सूर, मीरा, रसखान एवं धनानंद आदि माधुर्य क्षेत्र के ही उपासक थे। उनकी रचनाओं से पता चलता है कि उनका प्रेम लौकिक क्षेत्र से प्रारम्भ होकर अलौकिकता की उँचाई को पार कर जाता है। इस प्रकार लौकिक प्रेम भी समय पाकर आध्यात्मिकता को स्पर्श करने लगाता है।

लौकिक एवं परलौकिक प्रेम— भारत की संस्कृति धार्मिकता के प्रासाद पर टिकी हुई है। यहाँ पर काम को धर्म से सम्बन्धित माना गया है। ऋग्वेद में काम कामना के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अथर्ववेद के काम सूक्त में काम का अर्थ संकल्पयः के अर्थ में माना गया है, बृहयरण्योपनिषद के चतुर्थ ब्राह्मण में लिखा गया है कि प्रजनन के विषय को घृणास्पद नहीं मानना चाहिए। तैत्तरीय ब्राह्मण में काम की तुलना समुद्र से की गई है और प्रजा का उत्पादन प्रतिष्ठा का कार्य समझा गया है। गीता में उसको धर्म से आबद्ध माना गया है। वात्सायन के कामसूत्र में काम पति-पत्नी को धार्मिक एवं सामाजिक शिक्षा देता है—

“सो चोपामप्रतिपत्विः कामसूत्रादितिः वात्सायनः।

1 | 2 | 19³

भारत में कामजनित प्रेम की शुद्धता की जितनी अधिक प्रतिष्ठा हुई है, उतनी किसी अन्य देश में नहीं। यहाँ पर काम को बरकरार एवं भ्रष्टाचार पर संतुलन बनाये रखने के लिए वैवाहिक कार्यक्रम को मांगलिक एवं पवित्र बंधन के गाँठ से बांधा जाता है जो लोक-परलोक दोनों की सुरक्षा करती है, क्योंकि यहाँ “काम” सिर्फ शारीरिक बुभुक्षा को शान्त करने की वस्तु नहीं मानी जाती बल्कि उसे पवित्रता, शुद्धता, स्वच्छता, एवं आत्मीयता की उपाधि से शुशोभित की गयी है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी मन और आत्मा एक दूसरे के पूरक हैं। अतः जहाँ भी दोनों का मिलन स्थल है वहीं प्रेम भाव की पूर्ण अवस्था है। काम को धर्म से जोड़ने का अर्थ है कि काम सम्बन्धी उच्छंखल असमानिक आचरणों एवं दुर्व्यहारों पर नियंत्रण। क्योंकि काम के उपभोग मूलक दृष्टि को मुख्य माना जाय तो इसकी गिनती काम, क्रोध, मद, लोभ एवं षडयंत्रों में की जाने लगेगी। इसी को मध्यकालीन संत कवियों ने अपनाकर काम को वर्जित किया एवं स्त्रियों को खरी खोटी सुनाई —

नारी नसावे तीनि सुख, जानर पासै होई।

भगति मुकति निज ग्यान में, पैसिन सकर्म कोई।⁴

आगे कबीर दास जी स्त्रियों को नरक का कुण्ड तक कहते हैं, किन्तु इसके बाद भी साहित्य जगत के कामजनित प्रेम की प्रतिष्ठा होती रही और होती रहेगी इसमें कोई संशय नहीं। स्त्री-पुरुष के परस्पर शारीरिक आकर्षण एवं कामजनित माधुर्य प्रेम ही कवियों में कारण का विषय बना है। अपवाद

स्वरूप में यत्र-तत्र प्रेम के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं, काम मूल प्रवृत्ति है और प्रेम भाव मानसिक स्थिति। स्थूल संभोग प्रवृत्ति नहीं। रूप का सीधा संबंध आँखों से है जो किसी के रूप का वर्णन सुनकर हमारे ऊपर उतना तीव्र प्रभाव नहीं पड़ेगा जितना की उसके प्रत्यक्ष दर्शन में। प्रेम प्रत्यक्ष दर्शन के बाद ही पूर्ण होता है। रूप दर्शन के पश्चात् प्रेमी का मन व्याकुल हो उठता है, स्पर्श के लिए। स्पर्श प्रेम का महत्वपूर्ण सोपान है। वात्सायन ने भी इसे स्वीकार किया है—

स्पर्शादिश्य विषयात्वस्वामिमानिक सुखानुविद्ध

फूलवत्यर्थ प्रतीतिः प्रधान्यात्कामः। 1 | 2 | 12

अर्थात् चुम्बन आदि प्रारम्भिक सुख के साथ कपोल स्तन, नितम्ब आदि विशेष अंगों के स्पर्श से जो आनंद भी फलवती प्रवृत्ति होती है, वह काम है क्योंकि स्त्री-पुरुष के स्पर्श से विद्युत् की तरंगें उठा करती हैं, जो शरीर की रासायनिक प्रक्रिया द्वारा संभव होती और उससे इन्द्रिय कुंठाओं को बाहर निकलने का मार्ग मिलता है। इस प्रकार स्त्री-पुरुष का प्रेम लौकिक प्रेम के अन्तर्गत आता है। उनका परस्पर आकर्षण जब शारीरिक संतुष्टि की आशा रखता है तो उसे हम लौकिक प्रेम की संज्ञा देते हैं। इसमें भावनाओं के वशीभूत होकर स्त्री-पुरुष एक दूसरे को संतुष्टि की कामना से प्रेम करते हैं। इसे स्थूल रूप में मांसल प्रेम कहते हैं। किन्तु जब यह स्थूल मांसल प्रेम के माध्यम से व्यक्ति उस परमतत्व की कामना करके परमात्मा से अनुरक्त होकर उनके गुणों का चिंतन मनन करने लगता है तो वह अलौकिक रूप का गंभीर प्रेम समुद्र बन जाता है। इसमें प्रेम मांसल न होकर मन एवं इन्द्रियों से होता है। इसमें वासना नहीं उपासना होती है तथा उसके द्वारा कामुक इच्छाएं स्वतः शांत हो जाती हैं और साधक अपनी प्रेम साधना द्वारा परमात्मा की प्राप्ति कर अपने मोक्ष के मार्ग को प्रशस्त कर लेता है। धर्म एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है जबकि लौकिक-परलौकिक प्रेम से या स्त्री-पुरुष के प्रेम द्वारा (काम) जिसमें क्रोध, मद, लोभ एवं वासना की संतुष्टि होती है। प्रणय उत्सर्ग में जीता है, क्योंकि उसमें प्रतिदान की कामना नहीं रहती है। दार्शनिक विद्वान माया को ईश्वर का अंश ही मानते हैं जिसकी व्याख्या साहित्य में सभी सालों में सभी सदियों एवं संत महात्माओं ने सर्वसम्मत से स्वीकार किया है। गोस्वामी तुलसीदास स्त्री-पुरुष के जोड़ें को जो कि उनमें परलौकिक प्रेम से ईश्वर का अंश है, की चर्चा अपने रामचरित मानस में किया है।

अतः लौकिक-परलौकिक दोनों प्रेम अति आवश्यक है इनमें एक दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि पूरक समझा जाता है क्योंकि चारों पुरुषार्थों की (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष)



प्रेम में स्त्री-पुरुष का प्रेम होता है। मध्यकालीन कवियों में तुलसी, सूर, मीरा, रसखान एवं धनानंद आदि माधुर्य क्षेत्र के ही उपासक थे। उनकी रचनाओं से पता चलता है कि उनका प्रेम लौकिक क्षेत्र से प्रारम्भ होकर अलौकिकता की उँचाई को पार कर जाता है। इस प्रकार लौकिक प्रेम भी समय पाकर आध्यात्मिकता को स्पर्श करने लगाता है।

लौकिक एवं परलौकिक प्रेम— भारत की संस्कृति धार्मिकता के प्रासाद पर टिकी हुई है। यहाँ पर काम को धर्म से सम्बन्धित माना गया है। ऋग्वेद में काम कामना के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अथर्ववेद के काम सूक्त में काम का अर्थ संकल्पयः के अर्थ में माना गया है, बृहयरण्योपनिषद के चतुर्थ ब्राह्मण में लिखा गया है कि प्रजनन के विषय को घृणास्पद नहीं मानना चाहिए। तैत्तरीय ब्राह्मण में काम की तुलना समुद्र से की गई है और प्रजा का उत्पादन प्रतिष्ठा का कार्य समझा गया है। गीता में उसको धर्म से आबद्ध माना गया है। वात्सायन के कामसूत्र में काम पति-पत्नी को धार्मिक एवं सामाजिक शिक्षा देता है—

“सो चोपामप्रतिपत्विः कामसूत्रादितिः वात्सायनः।

1 | 2 | 19³

भारत में कामजनित प्रेम की शुद्धता की जितनी अधिक प्रतिष्ठा हुई है, उतनी किसी अन्य देश में नहीं। यहाँ पर काम को बरकरार एवं भ्रष्टाचार पर संतुलन बनाये रखने के लिए वैवाहिक कार्यक्रम को मांगलिक एवं पवित्र बंधन के गाँठ से बांधा जाता है जो लोक-परलोक दोनों की सुरक्षा करती है, क्योंकि यहाँ “काम” सिर्फ शारीरिक बुभुक्षा को शान्त करने की वस्तु नहीं मानी जाती बल्कि उसे पवित्रता, शुद्धता, स्वच्छता, एवं आत्मीयता की उपाधि से शुशोभित की गयी है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी मन और आत्मा एक दूसरे के पूरक हैं। अतः जहाँ भी दोनों का मिलन स्थल है वहीं प्रेम भाव की पूर्ण अवस्था है। काम को धर्म से जोड़ने का अर्थ है कि काम सम्बन्धी उच्छंखल असमानिक आचरणों एवं दुर्व्यहारी पर नियंत्रण। क्योंकि काम के उपभोग मूलक दृष्टि को मुख्य माना जाय तो इसकी गिनती काम, क्रोध, मद, लोभ एवं षडयंत्रों में की जाने लगेगी। इसी को मध्यकालीन संत कवियों ने अपनाकर काम को वर्जित किया एवं स्त्रियों को खरी खोटी सुनाई —

नारी नसावे तीनि सुख, जानर पासै होई।

भगति मुकति निज ग्यान में, पैसिन सकर्म कोई।⁴

आगे कबीर दास जी स्त्रियों को नरक का कुण्ड तक कहते हैं, किन्तु इसके बाद भी साहित्य जगत के कामजनित प्रेम की प्रतिष्ठा होती रही और होती रहेगी इसमें कोई संशय नहीं। स्त्री-पुरुष के परस्पर शारीरिक आकर्षण एवं कामजनित माधुर्य प्रेम ही कवियों में कारण का विषय बना है। अपवाद

स्वरूप में यत्र-तत्र प्रेम के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं, काम मूल प्रवृत्ति है और प्रेम भाव मानसिक स्थिति। स्थूल संभोग प्रवृत्ति नहीं। रूप का सीधा संबंध आँखों से है जो किसी के रूप का वर्णन सुनकर हमारे ऊपर उतना तीव्र प्रभाव नहीं पड़ेगा जितना की उसके प्रत्यक्ष दर्शन में। प्रेम प्रत्यक्ष दर्शन के बाद ही पूर्ण होता है। रूप दर्शन के पश्चात् प्रेमी का मन व्याकुल हो उठता है, स्पर्श के लिए। स्पर्श प्रेम का महत्वपूर्ण सोपान है। वात्सायन ने भी इसे स्वीकार किया है—

स्पर्शादिश्य विषयात्वस्वामिमानिक सुखानुविद्ध

फूलवत्यर्थ प्रतीतिः प्रधान्यात्कामः। 1 | 2 | 12

अर्थात् चुम्बन आदि प्रारम्भिक सुख के साथ कपोल स्तन, नितम्ब आदि विशेष अंगों के स्पर्श से जो आनंद भी फलवती प्रवृत्ति होती है, वह काम है क्योंकि स्त्री-पुरुष के स्पर्श से विद्युत् की तरंगें उठा करती हैं, जो शरीर की रासायनिक प्रक्रिया द्वारा संभव होती और उससे इन्द्रिय कुंठाओं को बाहर निकलने का मार्ग मिलता है। इस प्रकार स्त्री-पुरुष का प्रेम लौकिक प्रेम के अन्तर्गत आता है। उनका परस्पर आकर्षण जब शारीरिक संतुष्टि की आशा रखता है तो उसे हम लौकिक प्रेम की संज्ञा देते हैं। इसमें भावनाओं के वशीभूत होकर स्त्री-पुरुष एक दूसरे को संतुष्टि की कामना से प्रेम करते हैं। इसे स्थूल रूप में मांसल प्रेम कहते हैं। किंतु जब यह स्थूल मांसल प्रेम के माध्यम से व्यक्ति उस परमतत्व की कामना करके परमात्मा से अनुरक्त होकर उनके गुणों का चिंतन मनन करने लगता है तो वह अलौकिक रूप का गंभीर प्रेम समुद्र बन जाता है। इसमें प्रेम मांसल न होकर मन एवं इन्द्रियों से होता है। इसमें वासना नहीं उपासना होती है तथा उसके द्वारा कामुक इच्छाएं स्वतः शांत हो जाती हैं और साधक अपनी प्रेम साधना द्वारा परमात्मा की प्राप्ति कर अपने मोक्ष के मार्ग को प्रशस्त कर लेता है। धर्म एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है जबकि लौकिक-परलौकिक प्रेम से या स्त्री-पुरुष के प्रेम द्वारा (काम) जिसमें क्रोध, मद, लोभ एवं वासना की संतुष्टि होती है। प्रणय उत्सर्ग में जीता है, क्योंकि उसमें प्रतिदान की कामना नहीं रहती है। दार्शनिक विद्वान माया को ईश्वर का अंश ही मानते हैं जिसकी व्याख्या साहित्य में सभी सालो में सभी सदियों एवं संत महात्माओं ने सर्वसम्मत से स्वीकार किया है। गोस्वामी तुलसीदास स्त्री-पुरुष के जोड़ें को जो कि उनमें परलौकिक प्रेम से ईश्वर का अंश है, की चर्चा अपने रामचरित मानस में किया है।

अतः लौकिक-परलौकिक दोनों प्रेम अति आवश्यक है इनमें एक दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि पूरक समझा जाता है क्योंकि चारों पुरुषार्थों की (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष)



रूप से किया जा रहा है।

संस्कृत साहित्य में प्रेम भक्ति – संस्कृत के अगाध साहित्य में प्रेम के दोनों रूपों का दर्शन है – परा, अपरा विद्या। एक है वैदिक साहित्य का प्रेम एवं दूसरा लौकिक साहित्य का प्रेम वैदिक साहित्य के अन्तर्गत चारों वेदों, 18 पुराण सभी उपनिषदों का प्रेम आ जाता है। जिसमें ईश्वर द्वारा विभिन्न प्रयोजनार्थ लीलाओं का वर्णन है परलौकिक प्रेम कहलाता है। क्या कालिदास भवभूति एवं संस्कृत के आचार्यों की रचनाओं को प्रेम के दूसरे स्वरूप में रखकर विवेचन किया गया है। वैदिक युग में आर्य, इन्द्र, वरुण, रुद्र एवं विष्णु जैसे अनेक देवताओं का वर्णन करते किन्तु अंत में सबको एकसूत्र में समाविष्ट करके उस परमात्मा की पूजा करने लगे। वैदिक साहित्य में प्रेम साहित्य का अभाव सा है प्रिय तथा प्रिया या श्रेष्ठ जैसे अनेक शब्द अलग अलग पुसंगों में उद्धृत हैं। क्योंकि उस समय प्रेम शब्द का अर्थ सिर्फ काम शब्द से लगाया जाता था जो कामना का अर्थ प्रकट करता था जहाँ काम शब्द एक ओर सृष्टि संकल्प रूपी परमब्रह्म के लिए प्रयुक्त होता था वही दूसरी तरफ का अर्थ वासनात्मक के लिए लगता था। वेद का प्रत्येक सूक्त, मंत्र प्रभु से प्रेम का धारावाही सूत्र है। लौकिक प्रेम जो भिन्न-भिन्न प्रकार का है सभी का स्रोत वेद ही है। वेद में प्रभु को कहा गया है- **“त्वहिनो पिता वसो त्वमाता”** वेद में भक्ति का उतना ही महत्व दिया गया है जितना कर्म और ज्ञान का वैदिक मंत्रों में कर्म और ज्ञान द्वारा अमृत की प्राप्ति का वर्णन है, वहाँ प्रभु में प्रवेश पाने के लिए भक्ति रूपी सीढ़ियों की भी आवश्यकता है। जहाँ कर्म जटिल जाल को कुतरने वाला है। वहाँ ज्ञान की अग्नि वासनाजाल को भस्म करती है और भक्ति समस्त कर्म कलाप को प्रभु को अर्पित करके पाप को क्षीण करती है। अतः तीनों एक साथ दूसरे से अलग होते हुए भी अंत में एक लक्ष्य के बोधक सिद्ध होते हैं। अतः तीनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। नारद ने भक्ति सूत्र में भक्ति की व्याख्या करके उसे पर प्रेमरूपा फिर अमृत स्वरूप बताया है- **“त्वस्मिन् परप्रमरूपा।” “अमृत स्वरूपा च।।”** अर्थात् भक्ति अमृत स्वरूप है। जिस प्रकार रोगी को अच्छी औषधि से आराम मिलता है उसी प्रकार संसारी व्यक्ति को भक्ति से अमृतस्वरूपी औषधि की सुखानुभूति होती है। जिससे स्पष्ट होता है कि प्रेम भक्त प्रेम या प्रेमास्पद भगवान ही नित्य एवं अचल संयोग ही परम ध्येय है। आगे “नारद भक्ति सूत्र” में प्रेम को “स्वादनवत् अर्निवचनिया” कहकर यह कहते हैं कि प्रेम अपने पात्र में किसी गुण के रहने या न रहने की इच्छा नहीं करता और यह प्रतिक्षण विकासशील ही बना रहता है और किसी किसी पात्र में ही

प्रकाशित होता है। शांडिल्य ने भक्ति को ईश्वर में परम अनुरक्ति की संज्ञा दी है।

“सा परा अनुरिक्तश्चरे” शांडिल्य भक्तिसूत्र अर्थात् धन, जन आदि प्रपंच से चित्त की वृत्ति खींचकर जब निष्काम अनुराग का प्रवाह बहते बहते प्रबल वेग से भगवान में जाकर ठहर जाय तब उस एकांतिक भाव का ही नाम भक्ति है किन्तु शांडिल्य ने यहाँ अनुरक्ति को पूर्णतः स्पष्ट नहीं किया और नहीं किसी अन्य लेखक ने ही इस विषय का विवरण दिया। आधुनिक लेखकों ने भी इसे शुद्ध मनोवैज्ञानिक ढंग से विवेचित किया है और इसे अभिव्यक्ति को भौतिक या वासना संबंधी नियमों पर आश्रित माना गया है और बताया है कि यह एक प्रकार की भूख है। जिसकी अनुभूति प्रत्येक अंग को होती है। फ्रायड जैसे मनोवैज्ञानिक ने प्रत्येक भाव प्रेरक संबंध को ही यौन संबंधी प्रेम पर आश्रित ठहराते हुए बतलाते हैं कि वे सभी वस्तुतः काम वासना के ही परिमार्जित रूप हुआ करता है। किन्तु समान विज्ञान वाले केवल सामाजिक संबंधों को ही नियमित एवं नियंत्रित करने वाला नहीं है बल्कि आध्यात्मिक तत्त्व भी मानते हैं। क्योंकि काम एवं महती मानसी शक्ति है यह भौतिक रूपों में प्रकट होकर अतः क्रियाओ द्वारा व्यक्त होकर दो भागों में बंट जाता है। यही शक्ति के भी चैतय के रूप में और कभी भौतिक शक्ति के रूप में प्रकट हुआ करती है। नारद जैसे सिद्ध लेखक भी भक्ति की व्याख्या करते समय प्रेम को उसमें प्रेम लक्षण होने के कारण महत्व दिया है –

“ तदर्पिताविलाचारिता तद्धिस्मरणे परम व्याकुलता ” अर्थात् भगवान के प्रति अपने सभी कर्मों को अर्पित कर देना और उनके किञ्चितमात्र की विस्मृत हो जाने से अत्यन्त व्याकुल हो उठाना परमावश्यक मानते हैं, किन्तु साथ ही उसे वैसी रूप को देते जान पड़ते हैं-

“भक्ति रसामृत सिन्धु में” भक्ति रस के अन्तर्गत अनेक रसों को समाविष्ट करके उसे मधुर रस में परिणीत किया फिर भी प्रेम का परिचय प्रसन्न करते हुए बताया है कि जिस भाव द्वारा हमारी अन्तरात्मा स्निग्ध, कोमल एवं निर्मल हो तथा जिस पर ममत्व की गहरी छाप भी हो उसी के गाढ़े रूप को हम प्रेम की संज्ञा देते हैं।

“सम्यङ् मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयांक्ति ।”
भाव स एव सान्द्रला बुधैः विग्धते ।

सर्वप्रथम प्रेम साधना के स्पष्ट रूप का दर्शन श्रीमद्भगवत पुराण में ही होता है। राधाकृष्ण के प्रेम लीलाओं को धर्मिकता से जोड़ा गया है, जिसका वर्णन “गाथा सतसई” में है- “हे कृष्ण तुम राधिका में कपोलादि अंगों पर पड़ी धूल को अपने मुख से फूंक कर उड़ाते हुए अन्य गोपिकाओं में गौरव को भी हरण कर लेते हो, यहाँ पर



यह भाव है कि श्री कृष्ण की इस चेष्टा में अन्य गोपिकाएँ एवं प्रेमिकाएँ उनके राधा के प्रति प्रदर्शित प्रेमाधिका अथवा उसके चुम्बन आदि की आशंका से अपने को उसकी अपेक्षा हीनता मानने लगती है।¹⁰

अतः स्पष्टतः श्रीकृष्ण एवं राधा यहाँ पर साधारण प्रेमी नायक-नायिका के अतिरिक्त कुछ महत्व नहीं रखते। श्री कृष्ण की प्रेम लीलाओं का वर्णन करने वाले पुराणों में पद्मपुराण एवं ब्रह्मवैतपुराण प्रमुख हैं। जिसमें पद्मपुराण में तो ब्रजमण्डल का वर्णन है जो अलौकिकता से परिपूर्ण है। ब्रह्मवैतपुराण में भी ब्रज एक सामान्य ग्राम्य न बनकर गोलोक बन जाता है। वहाँ के राधा कृष्ण की साधारण प्रेम प्रेमिका नहीं है। इनमें वर्णित प्रेम क्रीड़ाएँ अलौकिक हैं। वे राधा कृष्ण जयदेव द्वारा वर्णित 'राधा माधव केलि से भिन्न है। राधा सिर्फ श्री कृष्ण की परमप्रिय प्रेयसी नहीं प्रत्युतसवमीय एवं अमृतरूपिणी चित्रित है।

सोलहवीं शताब्दी के पहले लगभग आठ, नौ सौ वर्षों में श्री कृष्ण एवं उनकी प्रेयसी राधा भक्ति कवियों द्वारा स्वीकृत कर ली गयी और उन दोनों की अलौकिक प्रेम लीला का वर्णन अधिक होने लगा था तथा भक्तों द्वारा उनके प्रेम लीलाओं का चिन्तन एवं मनन भी होने लगा था। प्रेमिका गोपिकाओं के जिस प्रेम का प्रणयन श्रीमत् भागवत पुराण में किया गया है वहाँ भी राधा पहले एक साधारण गोपी के रूप में ही वर्णित है। केलिरत श्री कृष्ण जब अचानक गोपियों को छोड़कर अर्न्तध्यान हो जाते हैं, तब वहा प्रेमिकाएँ विरहणी बनकर वृन्दावन में दूँढती फीरती हैं और पागल हो जाती हैं। तबतक उन्हें कहीं पदचिन्ह दिख जाता है जो उनके श्री कृष्ण का पदचिन्ह रहता है, साथ में किसी युवती के पदचिन्ह को पाकर वे आश्चर्यचकित हो गईं और सोचने लगी कि हो न हो ये ऐसी प्रेमिका का पद चिन्ह है जो हमारे प्रियतम के साथ उसी प्रकार चली होगी जिस प्रकार कोई हथिनी किसी हाथी के साथ चला करती है। इस प्रेमिका का ने हरि को आवश्यक अराधिकत कर लिया होगा।

"अनिया राधिते नून भगवा न्हरिश्वरः

यन्तो विहाय गोविंद प्रीतोयामः नयद्वहः । "

यहदेव का भी "गीत गोविंद" केवल प्रेमभाव का वासनाजन एवं कामुकता पूरक को श्रेय नहीं देता है वरन् उसमें श्री कृष्ण एवं राधा की अन्यन्त कोमल एवं मनोहारी प्रवृत्तियों का भी चित्रण किया गया है। कृष्ण की प्रेमिका राधा साधारण कोटि की कामिनी नहीं है, जो प्रायः लौकिक स्वार्थ के वशीभूत हो जाती है। वरन् उसका प्रेम निश्चल एवं अहैतुक है और पूर्णतः सहन एवं स्वाभाविक होने के कारण सदा नवीन एक रस बना रहता है। विरहणी राधा

की सहचरी उसके निकट आकर श्रीकृष्ण के अन्य गोपियों के साथ की जाने वाली किड़ाओं का पता बताती है। श्रीमद् भागवत पुराण में ब्रज सुन्दरियों के बीच श्रीकृष्ण की शोभा का वर्णन इस प्रकार है—

"तत्रातिशुभे ताभि र्भगवान देवकीसुतः

मध्येमणीनां हैमानां महामरकतो यथा ।"10। 33। 11

उपनिषद में भी एक ही सत्ता का वर्णन किया गया है। वही सारे सृष्टि का निमार्ण संचालन एवं निरस्त करने वाला है। इशावास्योपनिषद को लिखा है—

"इशावास्पस्यामिंद सर्वयतकिअच जगत्यां जगत्

तेन त्यक्तेन भुंज जीयां मा गृहा कस्यस्विद धनम्"

अर्थात् विश्व में जो भी कुछ स्थावर या जंगकात्मक पदार्थ है वे सब जगनियामक सृष्टि रचित लय करण समर्थ ईश्वर में आच्छादन करने योग्य हैं। यानि सब ही नाम रूप कर्ममार्त्य विमार जात वस्तुओं पर ईश्वरा शक्ति का अधिकार है। अर्थात् एक परमेश्वर ही सत्य है सुवर्ण में कंटक कुण्डलादिकों की तरह उसमें जगत कल्पित है। इस कारण एषणात्रमत्यागपूर्वक तथा वासना त्यागकर अपना निर्वाह करो। जैसे मकड़ी अपने जाल को विस्तार करती है और फिर उसे समेट लेती है। जिस पृथ्वी में औषधियाँ उत्पन्न होती हैं और जिस तरह जीवित पुरुष में केश-लोभ उत्पन्न होते हैं, वैसे ही उस अविनाशी परमात्मा से यह समस्त जगत उत्पन्न होते हैं।

"यथौर्णनभिः सृजते गृहते चयथा प्रपित्यामोषधयः शभक्ति यथासतः पुरुषात्केशलोभानि तथाक्षरात्स भवतिह विश्वसस्"¹²

जीव और ईश्वर नामक सदा साथ रहने वाले सत्य भाव युक्त या समान अख्यान वाले दो पक्षी एक ही वृक्ष का आश्रय लेकर रहते हैं उनमें से एक तो मधुर फल का भोग करता है यानि इंसान से कर्मफल अनुकरण करता है और दूसरा भोग नहीं करता केवल साक्षी होकर देखता रहता है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखा या समान वृक्ष परिस्त्रस्वजाते त्थौरत्यः पिस्पल स्वाद्वत्यन अन्योअशिचाकसीति ।।

अर्थात् वेद में कहा गया है कि जो समस्त संसार को चला रहा है उसी की कृपा से सुख की प्राप्ति होती है।

सोमाकामीहर्यश्वः सूर्यस्मादरेजन्ते भुवनानि विम्वायो जघानशम्बरपश्च शुण्यं य एकवीरंः स जनास इन्दः ।।¹³

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजन। डा बच्चन सिंह, पे0 89
2. श्रीमद् भागवत् पुराण । सं0 2027 । पे0 52



- | | |
|--|--|
| 3. कामसूत्र वात्स्यायन मुनि पपणीत । व्याख्याकार ।
देवदत्त शास्त्री । पे0 964 । 52 | 8. नारद भक्ति श्लोक 19 |
| 4. वात्स्यायन कामसूत्र । देवदत्त शास्त्री (व्या) पृ0
सं0 964 । पे0 43 | 9. नारद भक्ति । व्या । रमावतार शास्त्री । पे0 29 |
| 5. जायसी ग्रंथावली । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल । 2041 ।
पे0 36 | 10. महीकालीन प्रेम साधना । परशुराम चतुर्वेदी । पे0 2 |
| 6. ऋग्वेद । 8 । 67 । 2 | 11. गीता धर्म ईशावास्पोपनिषद् । व्या । विद्याविनोद
काव्य सहित । 1948 । पे0 27 |
| 7. नारद भक्ति सूत्र । व्या0- श्री रामावतार शास्त्री ।
पृ0 सं0 1939 ई0 । पे0 1,2 | 12. मुण्डकोपनिषद् । 7 । पे0 301 |
| | 13. मुण्डकोपनिषद् । पे0 332 |
| | 14. अर्थववेद शतकर । संस्वामी अयुम्तानंद सरस्वती ।
पे0 200 |
